International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746; Impact Factor: RJIF 5.34
Received: 26-06-2019; Accepted: 29-07-2019
www.alleducationjournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2019; Page No. 73-75

मुक्तिबोध के काव्य का तुलनात्मक अध्ययनः समकालीन कवियों के संदर्भ में

ब्रह्मप्रकाश शर्मा [1], डॉ. अनुभा पाण्डे [2]

[1] शोधार्थी, विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग) शा.एस.एल.पी. महाविद्यालय, मुरार, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

[2] शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग) शा.एस.एल.पी. महाविद्यालय, मुरार, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

मुक्तिबोध जिस युग में सामाजिक–राजनैतिक अर्न्तद्वन्दों को अभिव्यक्ति दे रहे थे, वह युग 'सपनों के टूटने' का युग था। स्वतन्त्र भारत जिस आषा और विष्वास के साथ विकास पथ पर आरूढ़ हुआ, वह विकास पथ क्रमषः अव्यवस्था और पूंजीवादी व्यवस्था के बीच फंसकर रह गया। बुद्धिजीवी वर्ग वैचारिक उच्छश्रृंखलता के साथ धीरे–धीरे सत्ता–मोह और उससे जुड़ी पूंजीवादी मनोक्रान्ति का षिकार हो गया। मध्यवर्गीय संस्कार मानव को यथास्थितिवादी और पराजयबोध से संचालित व्यक्ति बनाते चले गये और ऐसे में भारत जर्जर और अव्यवस्थित हो गया, इसी भारत को मुक्तिबोध के साथी कवि दुष्यंत कुमार ने अभिव्यक्ति दी :

''कल मेले में मिला वह चिथड़े पहने हुए
नाम पूछा तो बोला– हिन्दुस्तान हूँ।''

ऐसे चिथड़ों में लिपटे हिन्दुस्तान को प्रगतिवादी–प्रयोगवादी और नई कविता के श्रेष्ठ कवि मुक्तिबोध ने अभिव्यक्ति दी। यह अभिव्यक्ति मूलतः सामाजिक सन्दर्भों को उजागर करती और सामाजिक अन्तर्द्वन्दों को उद्भासित करती चेतना है। इसी सामाजिक चेतना को मुक्तिबोध के समकालीन कवियों ने अपने व्यक्तित्व के अनुसार देखा, जाँचा, परखा। यह जाँचना और परखना 'नयी कविता' के प्रवर्तक कवि अज्ञेय, शमषेर, भवानी मिश्र और नागार्जुन में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

हिन्दी काव्य साहित्य में 'नयी कविता' को विकास की ओर ले जाने वाले कवियों में अज्ञेय का नाम अग्रगण्य है। 'तार सप्तक' की उनकी परम्परा ने ही मुक्तिबोध जैसे कवि को पहली बार साहित्य जगत में स्थान दिलाया। एक तरह से मुक्तिबोध और अज्ञेय साहित्य की जिस धारा को पकड़े हुए थे वह धारा कहीं न कहीं सामाजिक रूढ़िबद्धताओं, पाखण्डों का खुला विरोध थी। अज्ञेय ने 'व्यक्ति स्वातन्त्र' का एक व्यापक आयाम अपनाया और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता' को समाहित कर लिया। मुक्तिबोध ने इसी स्वतन्त्रता को सामूहिक सन्दर्भ में ग्रहण किया। उनकी पहुँच हर प्रकार के शोषण के विरूद्ध थी जिसमें सामाजिक विश्रृंखलता और सामाजिक अवमूल्यन एकदम स्पष्ट उभर कर सामने आये।

नागर्जुन प्रगतिवादी काव्य धारा के सषक्त हस्ताक्षर हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य मुक्तिबोध की सामाजिक चिन्ता और सामाजिक चेतना का आगे का साहित्य है। नागार्जुन जिन आंचलिक मान्यताओं और निम्नवर्ग के प्रति गहरी चिन्ता की प्रवृत्तियों से संचालित रहे, वही प्रवृत्तियां मुक्तिबोध की जीवन संगिनी थीं। नागार्जुन का सोच, उनका वैचारिक धरातल और उनकी मान्यताएँ भले ही मुक्तिबोध जैसी गहन बौद्धिकता से आप्लावित न हो, लेकिन उनमें एक तथ्य स्पष्ट है और वह है – शोषण के विरूद्ध गहरी वितृष्णा, शोषण का प्रतिकार। नागार्जुन ने इस अव्यवस्था और अलोक हितकारी प्रवृत्तियों का व्यंग्यात्मक रूप में पर्दाफाष कियाः

धुन खाने शहतीरों की बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है छत चूती है, आले पर विस्तुईया नाँचें,
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे,
इस तरह दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचें।

नागार्जुन ने युगधारा, संतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथराई आँखें, भस्मांकुर आदि काव्य कृतियों के माध्यम से समाज की पथराई, प्यासी और तप्त जीवन प्रवृत्तियों को उभार दिया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नागार्जुन मुक्तिबोध की ही तरह निम्नवर्गीय जीवन से प्रत्यक्ष जुड़े रहे। नागार्जुन ने उस स्कूली मास्टर के यथार्थ को समझा जो चार साल की चतुर, चपल, बहरी, गूँगी, लड़की को षिक्षा–दीक्षा का इन्तजाम करने से मोहताज है। नागार्जुन की दृष्टि 'राजनैतिक अधर्म' को सबसे ज्यादा कोसती है। यह अधर्म ही मूलतः देष में फैले भ्रष्टाचार और अनैतिकता का स्त्रोत है। यह अधर्म स्वातन्त्र्योत्तर भारत के नये नेताओं के कार्यो का प्रतिफल है। नागार्जुन ने स्पष्ट और खुले तौर पर नाम सहित ऐसे तथाकथित मार्गदर्षकों को उधेड़ दिया। मुक्तिबोध इन्हीं अवसरवादी राजनैतिक स्वार्थों की फेहरिस्त बनाते है और उन्हें अपने रात के जुलूस में एकदम नंगा कर देते हैं।

नागार्जुन ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'तुम रह जाते दस साल और' में उन्होंने पूंजीवादी नेता के चरित्र का मूल्यांकन किया, ठीक इसी तरह 'अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' में उन्होंने इन्दिरा जी के जनमर्दिनी रूप को प्रस्तुत कियाः

कार्तूसों की माला होगी, होगा दृष्य अनूप
हथगोला–पिस्तौल–स्टेनगन सज्जित चंडीरूप
अबकी अष्टभुजा का होगा खाकीवाला भेष
लोकों में गूँजेंगें अबकी फौजी अध्यादेष।

मुक्तिबोध का काव्य मूलतः व्यंग्य से संचालित काव्य नहीं है। उनका काव्य विध्वंस के बाद पुनर्निर्माण का भी काव्य है। उसमें असंगति, पराजय बोध के विरूद्ध सिर्फ भर्त्सना भर नहीं है, बल्कि उसमें है एक दृष्टि जो समस्याओं पर एक समाधान देने की कोषिष करती है। हाँ, इस समाधान पर विवाद हो सकता है, लेकिन उसकी आस्था पर नहीं।

शमषेर 'नयी कविता' के प्रतिनिधि कवि हैं। वे मूलतः सौन्दर्यबोध के कवि माने जाते है। उनके लिए मुक्तिबोध ने लिखा– ''प्रणय जीवन के जितने विविध और कोमल चित्र वे प्रस्तुत करते हैं, उतने चित्र शायद और किसी कवि में दिखायी नहीं देता।'' लेकिन शमषेर को जीवन के कटु अनुभवों की कमी नहीं :

इंसान के अँखोटे में डालकर मुझे
सब कुछ तो दे दिया जब मुझे मेरे कवि

का बीज दिया कटु तिक्त। ('ओ मेरे घर')

इन अनुभवों ने शमषेर को सामाजिक जकड़बन्दियों का स्पष्ट आभास करा दिया। सामाजिक विश्रृंखलता को जिस गहराई में शमषेर ने समझा, वह गहराई उनके समाज दर्षन का आधार बनी। ''षमषेर की पीड़ा वर्तमान समाज को लेकर है।

यह मजेदार तथ्य है कि 'सप्तकों' की परम्परा के ये दोनों कवि भले ही वैचारिक एकता रखते हों, लेकिन दोनों के कथ्य, दोनों का षिल्प और यहां तक कि दोनों का लक्ष्य भी भिन्न हैं। शमषेर जहां सौन्दर्यपरक रूपवादी रूझान के कवि हैं, वहीं मुक्तिबोध यथार्थ के अन्वेषी। शमषेर जहां कम शब्दों में अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति कर देने में समर्थ हैं, वहीं मुक्तिबोध का षिल्प बिखरा और अनगढ़ है। उन्होंने शब्दों की मारक क्षमता पर अधिक ध्यान दिया। मुक्तिबोध का सौन्दर्य मधुर–मृसण नहीं, बल्कि उनका सौन्दर्य अनगढ़ और भदेस भी है।

'नयी कविता' के कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र की एक विषिष्ट पहचान है। 'दूसरा सप्तक' में संग्रहित कविताओं के अतिरिक्त उनकी कविताएं – गीत–फरोष, अंधेरी कविताएं, परिवर्तन जिए, चकित है दुःख बनी हुई रस्सी, अनाम तुम आते हो, फसलें और फूल, इत्यादि काव्य–संग्रहों में प्रकाषित हुई। उनके काव्य में किसी वाद या परम्पराबद्धता की अनुकरणात्मक छाप नहीं है, वरन् उसमें मौलिकता और सहजता का समावेष है। यह सहजता मूलतः कवि–मन की भावुकता और वैचारिक प्रबुद्धता से निर्मित सहजता है। सामाजिक यथार्थ, शोषण, अन्याय, विषमता के पर्याप्त चित्र भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी काव्य यात्रा में उकेरे है। उनका व्यंग्यवादी तेवर और बाद की कविताओं में गांधीवादी छाप उन्हें सहज ही यथार्थ–बोध का कवि बना देती है।

शब्द टप–टप टपकते हैं फूल से,
सही हो जाते है मेरी भूल से।

भवानी प्रसाद का शुष्क बौद्धिकता से कोई नाता नहीं। उन्हें मुक्तिबोध की ही तरह उन बुद्धिजीवियों से गहरी षिकायत है जो शासन–सत्ता के दलाल की तरह कार्य करते हैं। उन्हें स्पष्ट आभास है कि बुद्धिजीवी वर्ग अपनी जिम्मेदारियों से मुकर रहा है, वह धन–लोभ के लिए कविता का प्रयोग कर रहा है :

हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ
तरह–तरह के गीत बेचता हूँ। (गीत फरोष)

मुक्तिबोध का मानस सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये एक गहरी चिन्ता और चेतना रखता है। वह छटपटाता है–षोषण के विकराल रूप को देखकर। उसे रूलाई आती है चिमनियों से निकलते तप्त धुँए को देखकर। भवानी प्रसाद मिश्र भी इस शोषण की भट्टी को खूब पहचानते हैं। लेकिन उनकी पहचान प्रेम में डूबती–उतराती पहचान है। लयात्मक गीत और तुक से बद्ध उनकी कविता सामाजिक विश्रृंखलता को तो कम स्पष्ट करती है, वह स्पष्ट करती है वैयक्तिक मनोदषा को, वैयाक्तिक अनुभूतियों से संचालित नहीं। उनका दर्षन मूलतः प्राकृतिक सुषमा को लय देता दर्षन है।

सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते, अनमने जंगल। (सतपुड़ा के जंगल)

भवानी की यह व्यापकता उनकी सामाजिक चेतना की तीव्रता को कम करते हैं। समाज जिन आघातों और कटु अनुभूतियों को झेल रहा था, उन्हें तो यथार्थ के पास रहकर ही पकड़ा जा सकता है। मुक्तिबोध का काव्य इस छायावादी भावुकता से कोसों दूर है। उसे सामाजिक सरोकारों से ही मतलब है। उसमें शोषण का विरोध करने की अद्भुत क्षमता है। उसमें संकुचित ही सही (उन पर यह आरोप रसवादियों ने लगाया है) लेकिन एक गहरी करूणा है, आक्रोष है और है समाज के प्रति अभिभावक की जिम्मेदारी की भावना।

केदारनाथ अग्रवाल यूँ तो मुक्तिबोध और नागार्जुन की प्रगतिवादी धारा के ही कवि हैं लेकिन इन सबके अतिरिक्त उनमें एक सौन्दर्य है, जो निम्नवर्ग की संवेदना को उभार देता है। जिसमें कभी वृद्ध महिला की पोपली हँसी दिखाई देती है तो कभी कार्य में व्यस्त मजदूर की पसीने से हर शक्ल साकार हो उठती है। उनकी कविता ''आदर्षवाद से यथार्थवाद, रूपशक्ति से जीवनशक्ति और कोमल रागात्मकता से खुरदरे वस्तुचित्रण तक की कविता है।''

केदारनाथ का समाज मुक्तिबोध का और उससे आगे का खंडित समाज है जिसमें पराजयबोध, निराष और जकड़बन्दिया है। यह स्वतन्त्रता के बाद का समाज टूटते सपनों का समाज था और इसे राजनीति के दुष्चक्रों ने ऊबड़–खाबड़ बना दिया। इसी ऊबड़–खाबड़ समाज के प्रति गहरी जिम्मेदारी का भाव केदारनाथ में और स्वयं मुक्तिबोध में है। हाँ यहाँ फिर वही पुरानी बात उभरती है कि केदारनाथ इस भूले समाज में भी जीवनशक्ति देखते, उसमें भी उन्हें सौन्दर्य के दर्षन होते हैं, लेकिन मुक्तिबोध, वे तो इस समाज को इस जर्जर समाज को एकदम उलट–पुलट कर नया बना देने पर तुले हैं। उन्होंने अपनी चेतना को इस अव्यवस्थित और पूंजीवादी समाज के खात्मे तक सीमित कर लिया और इसलिए मुक्तिबोध का काव्य एक प्रहार है, उस सड़ी–गली मानसिकता पर जो समाज को पंगु बना रही है। केदारनाथ का अंचल प्रेम, प्रकृति–प्रेम और सूक्ष्म संवेगों के प्रति प्रेम उन्हें मुक्तिबोध से थोड़ा अलग ले जाता है। और यही वह स्तर है जहाँ मुक्तिबोध अपने साथी कवि केदारनाथ और नागार्जुन से दूर दिखाई देते हैं।

वस्तुतः मुक्तिबोध यथार्थ के कवि हैं। यथार्थ जो कड़वा है। जिसमे सब कुछ विलुप्त हो जाता है, जो जीवन संग्राम के चौखटों पर जंग खायी चिरकनी लगाता है। यथार्थ जो मुक्तिबोध को कहीं–कहीं तो अपराध बोध से भर देता है और देता आत्माविलोकन का अवसर। यह आत्माविलोकन मुक्तिबोध को ऐसा जीवन जीने के लिए मजबूर करता है जिसका अन्तिम षिरा बन्द स्याह गुफा में ही खुलता है और मिलता है, दर्द, कष्ट और जमानेभर की तकलीफें। यह तकलीफें मुक्तिबोध को केदारनाथ अग्रवाल के प्रगतिवाद से एक अलग तरीके का प्रगतिवादी कवि बनाती है और अधिक स्पष्ट करना चाहें तो, यथार्थ की एक परम्परा के कवि नागार्जुन और केदारनाथ है तो यथार्थवाद की ही दूसरी परम्परा के कवि मुक्तिबोध हैं। हाँ, इस यथार्थवाद को और अधिक व्यवस्थित करने की आवष्यकता आज भी बनी हुई है और इस पर विचार होना आज की जरूरत भी।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद और बाद में प्रगतिवाद के समकालीन कवि है। कविता के आत्म–संघर्ष और कविता में प्रत्यक्ष जटिल सामाजिक संघर्ष को समझने के लिए यदि हम विगत अर्द्धषाती के हिन्दी काव्य–परिदृष्य पर दृष्टि टिकाना चाहेंगे तो निराला का योगदान सबसे अधिक उत्तेजक, वैवध्ययुक्त और प्रखर जान पड़ेगा। निराला की काव्य संवेदना अधिक विषम, तीखी और उद्वेगकारी है। निराला पहले महत्वपूर्ण आधुनिक कवि हैं जिन्होंने मुक्तिबोध की तरह ही मनुष्य की मुक्ति के साथ ही काव्य भाषा की मुक्ति की चेष्टा की। मुक्तिबोध को भी यही चुनौती बार–बार झेलनी पड़ी :

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने होंगे,
तोड़ने ही होंगे, गढ़ और मठ सब। (अंधेर में)

निराला और मुक्तिबोध में दो व्यक्तित्व हिन्दी जगत में घोर उपेक्षा, घोर सामाजिक संत्रास और अव्यवस्थित जिन्दगी के पर्याय माने जाते हैं। निराला को जीवन भर साहित्य समीक्षकों के व्यवहार ने प्रताड़ित कियाः

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत,
मैं रहा आज यदि पार्ष्व–छवि। (सुमनों के प्रति पत्र)

मुक्तिबोध तो जीवनभर उपेक्षा और अकेलेपन के षिकार रहे ही। एक कवि जिसने जीवन को जैसा लिखा, वैसा भोगा, जिसने समाज की आत्मा को झकझोर दिया, जिसने बुद्धिजीवियों के लिए लिखा : विवेक वघार डाला स्वार्थो के तेल में। (अंधेरे में)
यह कवि अपने जीवन पर्यन्त अपना काव्य संकलन न निकाल सका और तो और उसकी रचनाओं को जब्त भी किया गया। यह जब्तीकरण परतंत्र भारत में होती तो मुक्तिबोध के लिए पुरस्कार होता, यह जब्तीकरण तो स्वतंत्र भारत में हुआ। जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संविधान में स्थान दिया गया था। फिर भला ऐसे में निराला का स्वतंत्र भारत : 'पटरी है काले की गोरे पर बैठने की'। मुक्तिबोध के स्वतन्त्र भारत से कैसे भिन्न होता। मुक्तिबोध का समाज, निराला ने कुछ पहले ही देख लिया।
निराला और मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष और बाहरी संघर्ष ठीक एक जैसा है। निराला का कवि–मन असत् की वेदना से लड़ते–लड़ते समाप्त होता है, ठीक वैसे ही मुक्तिबोध इन असत्य मूल्यों के विरूद्ध जीवनभर संघर्षरत रहे। निराला को असत्य के अंधेरों ने जकड़ लिया, लेकिन सत्य रूपी प्रकाष उन्हें संघर्ष के लिए मजबूर करता है मुक्तिबोध से निराला का सम्बन्ध जितना अधिक गहरा है, उतना ही कबीर से भी। वस्तुतः कबीर, निराला, और मुक्तिबोध एक ही परम्परा के वाहक हैं। कहना तो यह चाहिए कि इन तीनों की एक ही चिन्ता है, एक ही उनका लक्ष्य और एक ही उनके साधन हैं। कबीर ने मध्यकालीन जर्जर व्यवस्था के विरूद्ध न सिर्फ सामाजिक विद्रोह को वाणी दी बल्कि उन्होंने वैयक्तिक स्तर पर भी जीवन की सच्चाई को भोगा :

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।

रघुवीर सहाय नई कविता में क्षणबोध को पकड़ने वाले कवि हैं। उनकी दिलचस्पी अपने परिवेष में रही है और वे अपनी कविताओं में उसकी विसंगतियों और विडम्बनाओं का चित्रण करते रहे है।
रधुवीर सहाय के पास सही परिप्रेक्ष्य का अभाव तो दिखता है, लेकिन उनकी वैचारिक सूझ किसी सिद्धांत विषेष से कोसों दूर है और इसीलिए उनकी कविता सहज मानव की कविता है। वे 'सन्दर्भहीन समाचार' की कविता लिखते है। रघुवीर सहाय भावपूर्ण कविताएँ तो लिखते हैं, लेकिन भावुकता उनमें लेषमात्र भी नहीं। उनकी कविता समाज के विरूद्ध डंडा लेकर पीछे पड़ जाने की कविता नहीं बल्कि जीवन को जीने की कविता है, हाँ इस जीवन जीने में समाज अपनी पूरी सार्थकता में आता है। समाज के प्रति उत्तरदायित्वों से रघुवीर मुँह नहीं मोड़ते लेकिन फिर भी मुक्तिबोध के सामाजिक यथार्थ के अपने अलग अर्थ हैं जिनसे रघुवीर सहाय का लेना–देना नहीं। रधुवीर का क्षणबोध–षाष्वतबोध है।

संदर्भ सूची

1. परमानन्द श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य, पृ049
2. संतोष कुमार तिवारी : नये कवी – एक अध्ययन् पृ0101
3. लुना चार्स्की : ऑन लिटरेचर एंड आर्ट , पृ0376
4. मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्म–संघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ070–7
5. नन्द किषोर नवल : शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ011
6. अज्ञेय (सम्पादक) : दूसरा सप्तक, पृ088
7. नन्द किषोर नवल : शब्द जहाँ सक्रिय है, पृ015
8. परमानन्द श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य, पृ062
9. आलोचना, जुलाई–सितम्बर, 1992 (षमषेर–फूल नहीं रग बोलते हैं)
10. परमानन्द श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य, पृ011